# पूर्वमध्ययुग-३, बारहवीं शताब्दी तक

राजपूत-काल ६६
घरानों का प्रारम्भ ६७
मुसलिम-प्रवेश-काल में संगीत ६९
निष्कर्ष ७१

## मध्ययुग-३, पन्द्रहवीं शताब्दी तक


अलाउद्दीन खिलजी ७३

रज़िया सुलताना ७३

खुसरो ७४

तुग़लक-काल (गयासुद्दीन तुग़लक) ७४

मुहम्मद तुग़लक ७४

लोदी–काल ७६

चाँद बीबी ७७


●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

## मुगल-काल-१, सत्रहवीं शताब्दी तक


बाबर ७८

हुमायूँ ८०

निष्कर्ष ८१


●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

## मुगल-काल-२, अठारहवीं शताब्दी तक


राजा मानसिंह तोमर ८२

बैजू ८३

गोपाल नायक ८४

अकबर ८५

स्वामी हरिदास ८७

तानसेन ८८

वल्लभ-सम्प्रदाय ८६

जहाँगीर ६१

नूरजहाँ ६२

**मुगल-काल, ३**

शाहजहाँ ६४
औरंगजेब ६८
ज़ेबुन्निसा १००
मुहम्मदशाह रँगीले १००


## मध्यकालीन तथा प्रान्तीय संगीत

संगीत का अन्य कलाओं पर प्रभाव १०२
प्रान्तीय लोक-संगीत १०५
कश्मीर और लद्दाख १०५
काँगड़ा १०५
हिमालय की तराई १०५
उत्तर-प्रदेश १०६
पंजाब १०७
सिंध १०७
गुजरात १०७
सौराष्ट्र १०८
राजस्थान १०८
मध्य-प्रदेश १०८
महाराष्ट्र १०९
बंगाल १११
उड़ीसा १११
बिहार १११
आसाम ११३

# पूर्व-मध्य युग—३
## (८ वीं से १२ वीं शताब्दी तक)

### राजपूत काल

हर्षवर्धन के बाद देश अनेक छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त हो गया, जिनमें परस्पर कोई एकसूत्रता नहीं थी। प्रत्येक वर्ग या टुकड़ा अपने को ही महत्त्व देने लगा। इन वर्गों के प्रधान या राजा, दूसरे वर्गों के प्रधान या राजाओं से प्रेम का व्यवहार न करके ईर्ष्या रखते थे। इन राजाओं में परस्पर फूट उत्पन्न हो गई थी, अतः सदैव एक-दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करते रहते थे। ये राजा या प्रधान, राजपुत्र होने के कारण राजपूत कहलाते थे। इन लोगों को युद्ध प्रिय था। अतः इनका अधिकांश समय दूसरों को जीतने तथा युद्ध में लगे रहने में ही व्यतीत होता था।

इनकी परस्पर फूट को देखकर ही यवनों ने अवसर से लाभ उठाने के लिए भारत पर आक्रमण कर दिए। बस, फिर क्या था, इनका रहा-सहा अहंकार भी चूर हो गया और भारत में यवन-सत्ता स्थापित हो गई। इन परिस्थितियों में संगीत की स्थिति बड़ी दयनीय हो गई। मौर्य तथा गुप्तकाल में संगीत की जो अविच्छिन्न धारा सार्वभौमिकता के रूप में



स्थापित हो गई थी, वह इस काल में अनेक वर्गों में बँट गई। प्रत्येक वर्ग का संगीत एक-दूसरे से भिन्न होता चला गया। इन वर्गों ने अपने निजी दृष्टिकोण के अनुरूप संगीत का विकास किया।

वैसे, अनेक 'राजपूत जितने शूरवीर थे, उतने ही संगीत-प्रेमी भी थे। वे संगीतकारों का आदर भली-भाँति करते थे। उनके राज-दरबार में अनेक संगीतज्ञों और कलाकारों को आश्रय मिला करता था। इस युग के नए कलाकारों का विकास राज्याश्रय प्राप्त होने पर ही हो सका। इस युग का संगीत अधिकतर राज्याश्रय के संरक्षण में ही उन्नति कर सका।'[1] इस काल में स्त्रियों में भी नाच-गाने का प्रचार था। वे सुशिक्षित होती थीं और सामाजिक जीवन में सक्रिय भाग लेती थीं। किंतु 'राजपूत-काल के संगीत का पुष्प पूर्ण रूप से इसलिए प्रस्फुटित न हो सका कि इस काल के कलाकारों की मनोवृत्ति बड़ी संकीर्ण एवं ईर्ष्यापूर्ण थी। वे परस्पर ही एक-दूसरे से ईर्ष्या किया करते थे। एक कलाकार दूसरे कलाकार को नीचा दिखाने का अवसर खोजा करता था। जो कलाकार कला के उच्च स्तर पर पहुँच जाते थे, वे इतने अहंकारी हो जाते थे कि फिर उनसे देश को कोई नवीन प्रकाश नहीं मिल पाता था।'[2]

### घरानों का प्रारम्भ

इस काल के कलाकार अपने संगीत-ज्ञान को इतना छिपाकर रखते थे कि वे किसी अन्य जातिवालों को तो क्या,

---

१. विश्व के इतिहास की डायरी—अजमत

२. दी एन्शिएन्ट म्यूजिक आफ इण्डिया—अलबर्ड पोल

अपनी ही जातिवालों तक को बताने के लिए संकोच करते थे। यह संकीर्णता यहाँ तक बढ़ी कि वे संगीत के ग्रन्थ भी नहीं लिखते थे। उनका संगीत पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला करता था। यदि वे निःसन्तान होते तो उनका संगीत भी उन्हीं के साथ समाप्त हो जाता था। इस संकीर्ण मनोवृत्ति के फलस्वरूप संगीत के क्षेत्र में 'घरानों' की नीवें पड़ गयी। इसी घराने की परिपाटी ने संगीत के विकास को अवरुद्ध कर दिया। इस संकीर्ण मनोवृत्ति ने राजपूत-काल के संगीत को स्वस्थ वातावरण में नहीं पनपने दिया।

जिन राजाओं ने संगीत को राज्याश्रय दिया, उनके महलों में राग-रागिनियों के चित्र भी बनाए गए। परन्तु इस काल में संगीत को राज्याश्रय प्राप्त हो जाने के कारण वह सामन्तशाही बन गया। अब संगीत जन-सामान्य के जीवन से हटता गया और उसमें सामन्ताशाही ऐश्वर्य प्रवेश करता गया। शृंगारपूर्ण संगीत का निर्माण होने लगा और संगीत अपनी नैतिक मर्यादा के स्तर से गिरता चला गया। सर्वसाधारण के जीवन से शास्त्रीय संगीत पृथक् हो जाने के कारण लोक-संगीत का निर्माण होने लगा। इसी काल में उत्तर तथा दक्षिण-भारत के संगीत की धाराएँ भी पृथक्-पृथक् बह निकलीं। इसका एक मुख्य कारण यह भी था कि ग्यारहवीं शताब्दी में पठानों के आक्रमण से भारतीय संगीत में एक परिवर्तन-सा होने लगा। मुसलमानी संगीत का प्रभाव भारतीय संगीत पर पड़ने लगा, जबकि दक्षिण-भारत इन यवनों के आक्रमणों से बचा रहा, अतः उसकी संस्कृति सुरक्षित रह सकी।



## मुसलिम-प्रवेश-काल में संगीत

११-वीं से १३-वीं शताब्दी तक भारत पर बराबर मुसलमानों के आक्रमण होते रहे। उन दिनों मानव-जीवन की स्थिरता नष्ट हो रही थी। लोगों के जीवन कष्टपूर्ण बनते जा रहे थे। 'हिंदुस्तान पर मुसलमान राजाओं की विजय से यहाँ के संगीत-इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण काल आरम्भ होता है। इसी समय से, विशुद्ध भारतीय कलाओं और विद्वानों के पतन का श्रीगणेश हुआ, क्योंकि मुसलमान विद्या के कोई बड़े संरक्षक नहीं थे। उनमें जो अधिक कट्टर थे, वे केवल बड़े मूर्तिभंजक ही नहीं, बल्कि देश की प्रगति को अवरुद्ध करनेवाले हुए। संगीत-शास्त्र की प्रगति फिर एक बार रुक गई और उसका शीघ्रता से पतन होने लगा।'[1] इस प्रकार 'मुसलमान-प्रवेश-काल भारतीय संगीत के लिए महान् अभिशाप बन गया। इस काल में भारतीय संगीत को एकदम कुचल दिया गया। उसके देदीप्यमान प्रकाश को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया गया……विजयी मुसलिम राजाओं ने भारतीय संगीतज्ञों का सम्मान बिल्कुल नहीं किया। वे अपने साथ ही कुछ कलाकारों को लाए थे और दरबार में उन्हीं का सम्मान करते थे। उन्होंने भारतीय संगीत के अद्वितीय साहित्य को जड़ से नष्ट कर दिया।'[2] परन्तु यह कार्य उन्हीं मुसलिम राजाओं ने किया, जिनका ध्येय भारत को केवल लूटना और उसके वैभव को

---

१. ए ट्रीटाइज आन 'दी म्यूजिक आफ हिन्दुस्तानी'—कैप्टेन विलर्ड, पृ० १०६।

२. 'दी इन्टरनेशनल वैल्यूज ऑफ इण्डियन म्यूजिक'–रीवाल्य आजो।

नष्ट करना ही था। ये लोग इसे अपना देश नहीं समझते थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति की पुस्तकों को मनमाने ढंग से नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। भारतीय अपने अनुपम ग्रन्थों की रक्षा न कर सके, अतः भारतीय संगीत की अमूल्य संचित निधि भी नष्ट हो गयी।

किन्तु, जो मुसलमान भारत को अपना देश समझ बैठे, उन्होंने यहीं बसना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार क्रमशः मानव-जीवन में मुसलिम संस्कृति ने प्रवेश करना प्रारम्भ कर दिया। अब भारतीय लोगों के सामने दो संस्कृतियाँ उपस्थित हो गयी थीं। वे भारतीय व मुसलिम संस्कृतियों के मध्य से चल रहे थे। वे लोग यह निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि वे उस नवीन संस्कृति को अपनायें, जिसने बाहर से प्रवेश किया है या उसको तिरस्कार की दृष्टि से देखें। फिर जिन लोगों ने मुसलिम संस्कृति को न अपनाने का निश्चय किया, उनकी आवाज को मुसलिम शासकों ने दबा दिया। अनेक व्यक्ति मुसलिम शासकों के चमकदार प्रलोभनों के कारण अपने नैतिक चरित्र से गिर गये। लोग छोटे-छोटे प्रलोभनों में फँसने लगे। ऐसे डगमगाते युग में संगीत का पतन के मार्ग पर चलना प्रारम्भ हो गया। विदेशों से आए हुए शृंगारिक वातावरण का एवं भोग-विलास-प्रधान वायुमण्डल का समावेश भारतीय संगीत में होने लगा। उसकी पवित्रता समाप्त होगयी। देश में अज्ञानता एवं दुर्गुणों का प्रवेश होने लगा। इन्हीं दुर्गुणों एवं नैतिक पतन के मध्य से भारतीय संगीत को अपना मार्ग बनाना पड़ा। यही नहीं, वरन् मुसलिम राजाओं ने बड़े-बड़े प्रलोभन देकर भारतीय विद्वानों से अनेक ऐसे ग्रन्थ लिखवाए, जिनमें मुसलिम संस्कृति एवं सभ्यता की प्रशंसा की गयी थी, ताकि लोग उन



पुस्तकों को पढ़कर मुसलिम संस्कृति की ओर आकर्षित हों। इसका परिणाम भी यही हुआ। लोग, मुसलमानी धर्म ग्रहण करने लगे। इन धर्म-परिवर्तित लोगों को उच्च पद दिए गए। अब ये लोग भी मुसलिम संस्कृत एवं उनके संगीत की प्रशंसा करने लगे और साथ ही उनमें परिवर्तन की आवश्यकता भी अनुभव करने लगे।

इसलिए 'हम उस एकमात्र साधन से, जिसके द्वारा उस समय के संगीत की स्थिति का स्वरूप जान सकते थे, वंचित रह जाते हैं, क्योंकि उस काल का कोई भी संगीत-ग्रन्थ आज प्राप्त नहीं है।'[1] लेकिन 'दक्षिण-भारत में आंतरिक हलचल बहुत कम हुई है। उत्तरी प्रांतों एवं दक्खिन के बजाय वहाँ हिन्दू शासन अधिक काल तक रहा। फलस्वरूप, उत्तर में वास्तविक कला के लुप्त हो जाने के बहुत समय बाद तक भी दक्षिण में संगीत के विज्ञान की सुरक्षा एवं क्रमोन्नति हुई।' ....इस प्रकार उत्तर-भारत में 'भारतीय संगीत का सबसे समृद्धिशाली युग मुसलमानों की विजय के पूर्व स्थानीय राजाओं का काल ही रहा। मुसलमानों के आगमन के साथ ही संगीत पतनोन्मुख हो गया और यह तो सचमुच आश्चर्यजनक है कि उसका अस्तित्व आज तक बना रहा।'[2]

## निष्कर्ष

इन सब बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि संगीत

१. ए शार्ट हिस्टोरीकल सर्वे आफ दी म्यूजिक आफ अपर इण्डिया—भातखण्डे

२. म्यूजिक आफ सदर्न इण्डिया—कैप्टिन डे

के मार्ग में मुसलिम संस्कृति का प्रवेश न हुआ होता तो आज उसके गौरव की सुषमा अनिर्वचनीय एवं अवर्णनीय होती। उसका प्राचीन वैदिक सौन्दर्य नष्ट नहीं होता। परन्तु यह सब-कुछ होते हुए भी भारतीय संगीत की स्वर्णिम ज्योति का मुसलिम संगीत के ऊपर आधिपत्य रहा। मुसलिम संगीत, भारतीय संगीत की आत्मा को प्रभावित नहीं कर सका। इसी कारण से, उसी आत्मिक शक्ति के बल पर वह आज तक विकास के पथ पर आरूढ़ है और संसार के संगीत में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने को लालायित है।

□ □ □



# मध्य युग-३

## १३ वीं से १५ वीं शताब्दी तक

### अलाउद्दीन खिलजी

१९ जुलाई सन् १२९६ ई० को अलाउद्दीन फीरोज खिलजी गद्दी पर बैठे। यह पहले वे मुसलमान बादशाह थे, जिन्होंने संपूर्ण उत्तर-भारत को अपने अधिकार में कर लेने के बाद दक्षिण-भारत की विजय की ओर ध्यान दिया। सन् १२९४ ई० में उन्होंने ढाका पर आक्रमण किया तथा सन् १३१० ई० तक उनके सेनापति मलिक काफूर द्वारा दक्षिण-विजय का कार्य पूरा किया गया। उस समय दक्षिण-भारत के अनेक संगीतज्ञों को शाही सेना के साथ उत्तर-भारत में लाकर बसाया गया।[1] इन्हीं संगीतज्ञों में एक संगीत-विद्वान् गोपाल नायक भी थे। अलाउद्दीन संगीत-प्रेमी बादशाह थे, अतः उन्होंने संगीत के प्रचार एवं प्रसार में बड़ा योग दिया।

### रजिया सुलताना

तेरहवीं शताब्दी में गुलाम वंश के द्वितीय सुलतान अल्तमश की पुत्री रजिया सुलताना को संगीत से बड़ा प्रेम था। वह विद्वानों तथा संगीतज्ञों का आदर करती थी। उसके दरबार मे

१. दी यूनिवर्सल हिस्ट्री आफ म्यूजिक, एस० एम० टैगोर, पृष्ठ ५४

श्रेष्ठ संगीतज्ञ रहा करते थे। वह गाना सुनने पर पुरस्कार भी देती थी।

## खुसरो

अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में अमीर खुसरो नामक एक फारसी कवि एवं संगीतज्ञ थे, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ही संगीत के लिए अर्पित कर दिया था। 'उन्होंने गोपाल के गायन को सुनकर 'कव्वाली' तथा 'तराना' नामक शैली को जन्म दिया।'[1] इस प्रकार इस युग में संगीत का कुछ विकास ही हुआ।

## तुगलक काल (गयासुद्दीन तुगलक)

सन् १३२० ई० में गयासुद्दीन तुगलक गद्दी पर बैठे। उस समय साम्राज्य की स्थिति छिन्न-भिन्न होने के कारण उन्हें अपनी संपूर्ण शक्ति शासन-व्यवस्था को ठीक करने में लगानी पड़ी। अतएव उन्हें संगीत तथा अन्य कलाओं के विकास की ओर ध्यान देने का अवसर ही नहीं मिला। दूसरे, उन्हें संगीत से कोई विशेष रुचि भी नहीं थी।

## मुहम्मद तुगलक

सन् १३२५ ई० में गयासुद्दीन तुगलक के पुत्र मुहम्मद तुगलक गद्दी पर बैठे। मुहम्मद तुगलक संगीत-प्रेमी थे। वे कलाओं के विकास में रुचि रखते थे। इनका विस्तृत साम्राज्य तेईस सूबों में विभक्त था। किन्तु इन सूबों के कलाकार कभी एक स्थान पर नहीं मिल पाते थे। कारण राज्य की ओर से

१. ट्रीटिज आन दी म्यूजिक आफ हिंदोस्तान—कैप्टिन विलियर्ड पृष्ठ १६०



कोई ऐसा प्रबन्ध नहीं होता था। हाँ, प्रान्तीय संगीत-समारोह बराबर चला करते थे। इनमें संगीत-प्रदर्शन के अतिरिक्त संगीत-शास्त्र पर भी विवेचन हुआ करता था। मुसलिम स्त्रियों को भी संगीत प्रिय था, परन्तु परदे की प्रथा के कारण वे सार्वजनिक संगीत-समारोहों में भाग नहीं लिया करती थीं। परदे के कारण हिन्दू नारियाँ भी घरों में ही रहा करती थीं। अतः इनकी शिक्षा का क्रम भी बन्द हो गया।

## इब्न बतूता

उन्हीं दिनों अफ्रीका का एक यात्री इब्न बतूता (सन् १३३३ई० में) भारत में आया था। उसका कहना है कि 'संगीत को संकीर्णता की सुदृढ़ दीवारों में कैद कर दिया गया था, फलस्वरूप उसकी दशा पानी के उस गड्ढे के समान हो गयी थी, जिसमें न कोई बहाव ही, न उनमें बाहर से पानी आने का कोई स्रोत और अन्त में उसमें सड़ायँध पैदा हो जाती है। ठीक यही स्थिति भारतीय संगीत की थी।' इस प्रकार 'तुगलक-काल में संगीत का विकास बहुत ही न्यून मात्रा में हुआ........ परन्तु भारतीय जनता का जीवन पूर्ण संगीतमय हो रहा था..........परदे के कारण नारियों में संगीत का विकास अवरुद्ध-सा हो गया था।........संगीत-प्रधान नाटकों का खूब प्रचार था। ग्रामीण लोग नगर के संगीत में और नगरवाले ग्रामीण संगीत में रुचि नहीं रखते थे। अतः इस काल में सर्वप्रथम नगर और ग्राम के संगीत में दीवार-सी बनती प्रारम्भ हो गयी थी।'[1]

१. 'दी इण्डियन म्यूजिक आफ मुसलिम पीरियड—केलडास्टो, पृष्ठ ५०

## लोदी-काल

इस काल के उपरांत लोदी-काल (सन् १४१४-१५२६ ई०) में संगीत ने पुनः करवट ली। जनता में संगीत के प्रति बड़ा उत्साह था। परन्तु हिन्दू कलाकार अब इस पक्ष में नहीं थे कि भारतीय संगीत को और अधिक बिगाड़ा जाए। वे संगीत का विकास तो चाहते थे, परन्तु भारतीय संगीत के मौलिक सिद्धांतों का गला घोटना उन्हें अरुचिकर था। उधर, मुसलिम कलाकार इस प्रयत्न में थे कि जिस संगीत-पद्धति को वे अरब से लाए हैं, उसे ही भारतीय वातावरण में ढाला जाय ताकि उनका मान-सम्मान और प्रधानता शासन में स्थिर रही आए। अन्त में यही निश्चय हुआ कि भारतीय संगीत के यथार्थ रूप की रक्षा की जाए।

इस प्रकार यद्यपि भारतीय संगीत में कुछ परिवर्तन हुए परन्तु भारतीय संगीत की अपनी यह एक विशेषता बनी रही कि वह विदेशी रूपों को ग्रहण करके अपने में पचाता रहा और अपना रूप ही सर्वोपरि रखता रहा। इसी गुण को देखकर एक विद्वान् ने लिखा है कि 'भारतीय संगीत उस सागर के समान है, जिसमें चारों ओर की सब नदियाँ आकर मिलती हैं और फिर भी सागर अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ता, वह अपनी स्वाभाविक स्थिति तथा स्वाभाविक सौंदर्य को अक्षुण्ण रखता है। भारतीय संगीत ने अपनी मौलिक मर्यादा को कभी नहीं छोड़ा, यद्यपि उस पर अनेक रंग चढ़ाए गए, कई प्रकार की पालिश की गयी, कई साँचों में ढाला गया, परन्तु फिर भी भारतीय संगीत अपनी भारतीयता के उज्ज्वल सौंदर्य को न छोड़ सका।'[1] अस्तु।

१. अरेबियन विद्वान् जाइयाली



यद्यपि 'सिकन्दर लोदी को संगीत-ज्ञान कुछ भी नहीं था, परन्तु वह एक योग्य शासक था। वह विद्वानों का आदर करता था। इसके शासन-काल में भारतीय संगीत की उन्नति हुई। गजल और खयाल (गायकी के प्रकार) अधिक बने।'[1]

## चाँद बीबी

१६-वीं शताब्दी में अहमद नगर के सुलतान की पुत्री चाँद बीबी एक महान् संगीतज्ञा थी। वह संगीत के द्वारा युद्ध करने की प्रेरणा लिया करती थी। लड़ाई के मैदान में भी गाना गा लिया करती थी। उसके दरबार में संगीतज्ञ रहा करते थे। ध्रुवपद-शैली अधिक प्रिय थी, परन्तु कभी-कभी भजन भी गाया करती थी। 'सोलहवीं शताब्दी में चाँद बीबी ने भारतीय संगीत को विकासपूर्ण बनाया। वह एक महान् संगीतज्ञा थी'।[2]

□ □ □

१. इण्डियन म्यूजिक—गार्लोबोविस, पृष्ठ ४५
२. दी फण्डामेंटल ग्राउण्ड आफ इण्डियन म्यूजिक—वाई दिल बोल

# मुगल काल-१
## (१६ वीं और १७ वीं शताब्दी)

### बाबर

सिकन्दर लोदी के उपरांत मुगल-काल का प्रथम चरण प्रारम्भ हो जाता है। इस काल का प्रारम्भ बाबर से होता है और समाप्ति हुमायूँ की मृत्यु पर। इस काल पर जब हम विचार करते हैं तो विदित होता है कि 'बाबर जहाँ एक वीर योद्धा था, वहाँ एक संगीतज्ञ भी था। वह गाने में प्रवीण था और गायकों का सम्मान करता था। जब उसने भारत पर आक्रमण किया था, तो वह अपने साथ संगीतज्ञों को भी लाया था। पानीपत की लड़ाई में उसका युद्ध-संगीत बड़ा प्रभावशाली था। यह संगीत भारतीय युद्ध-संगीत से पृथक् था, उसकी अपनी अपूर्वता थी। श्रेष्ठ गानेवालों को पुरस्कार भी दिया करता था। उसका विश्वास था कि संगीत में एक ऐसी शक्ति है, जिसके द्वारा मानव का हृदय सहज ही में परिवर्तित हो सकता है। उसे अरेबियन व तुर्की-नृत्य अत्यन्त प्रिय थे, परन्तु भारतीय नृत्यों का ज्ञान न रखने के कारण वह उनमें विशेष रुचि नहीं रखता था।'[1] उसके काल में भारतीय संगीत उन्नति के मार्ग पर ही अग्रसर होता रहा।

१. भारत के प्राचीन संगीत की खोज—गमाल आस्वानी



बाबर हारे-थके सैनिकों की थकावट को दूर करने के लिए संगीत का आयोजन उनके विश्राम-केन्द्रों पर किया करता था। उसकी दृष्टि में संगीत केवल मनोरंजन की वस्तु था, अतः इसमें शृंगारिकता प्रवेश करती चली गई। परन्तु इसी काल में (१४८५-१५३३ ई० में) उत्तर-भारत में भक्ति-आन्दोलन का जोर हो गया। बंगाल में भी श्री चैतन्य महाप्रभु एवं अन्य भगवद्भक्तों के द्वारा संकीर्तन का प्रचार हो रहा था। इस प्रकार भजन-कीर्तन के द्वारा संगीत को महान् शक्ति प्राप्त हो रही थी और उसका आत्मिक सौंदर्य प्रस्फुटित होता रहा।

"इस प्रकार इस काल में जहाँ एक ओर भारतीय संगीत के उस अंग का, जिसको मुसलिम शासक अधिक पसन्द करते थे, विकास हो रहा था तो दूसरी ओर उसका शुद्ध भारतीय रूप भी विकास की ओर उन्मुख हो रहा था। अतः इस काल में हमें भारतीय संगीत के दोनों रूप साथ-साथ विकसित होते हुए मिलते हैं। एक ओर तो चैतन्य महाप्रभु अपने सांगीतिक कीर्तनों के द्वारा भारत की सामान्य जनता को संगीत की ओर आकर्षित कर रहे थे और दूसरी ओर खयाल व कव्वालियों के द्वारा संगीत का एक नवीन प्रकार मुखरित हो रहा था। वास्तव में मुगल-काल का प्रथम चरण संगीत के दृष्टिकोण से बड़ा महत्त्वपूर्ण काल रहा है। इस काल में ऐसे अनेक संगीत-रत्न उत्पन्न हुए, जिन्होंने अनेक प्रकार से संगीत की सेवा की। ऐसे शास्त्रकार भी पैदा हुए, जिन्होंने संगीत के शास्त्रीय पथ को सुदृढ़ किया। इस प्रकार संगीत के अन्दर, मध्यकाल में जो गिरावट तथा लड़खड़ाहट आ गई थी, वह इस काल में स्थिर होकर सुव्यवस्थित होने लगी।'[1]

१. मैन एण्ड म्यूजिक—डामो, पृष्ठ ३५

यह सब होते हुए भी 'इस काल में दक्षिण-भारत का संगीत अपनी प्राचीन सुषमा को देदीप्यमान कर रहा था। इस प्रकार मुगल-काल में प्रथम चरण में संपूर्ण भारत में संगीत की हलचल हो रही थी। यह हलचल यदि कहीं कव्वाली और खयाल आदि के रूप में मिलती है तो कहीं कीर्तन, भजन और गीतों के रूप में।'[1]

## हुमायूँ

बाबर के उपरांत हुमायूँ गद्दी पर बैठे। 'हुमायूँ' के समय में सूफियों का बड़ा जोर रहा। ये लोग मानव-जीवन की सुन्दर बातों को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया करते थे। इनके विचारों के प्रस्तुतीकरण का ढंग बड़ा आकर्षक और संगीतमय होता था। ये जिस बात या सिद्धांत को गाने की मीठी ध्वनि में जनता के सन्मुख रखते थे, वह बात मानव-हृदय पर नगीने की तरह जड़ जाती थी।'[2]

हुमायूँ स्वयं भी संगीतज्ञों का बड़ा आदर करता था। उसे वे ही गीत अधिक प्रिय थे, जिनमें आत्मा और परमात्मा के दिव्य रूप पर प्रकाश डाला गया हो। 'हुमायूँ' ने संगीत को संकटकालीन अवस्था में भी नहीं छोड़ा। उसे संगीत बड़ा प्रिय था। उसका विश्वास था कि संगीत से मानव-जीवन में एक नवीन प्रकाश आता है। यह जीवन में एक नूतन उत्साह भरता है और इसी लिए वह मरते समय तक संगीत का महान्

१. 'दी हिस्ट्री आफ डकम्स म्यूजिक'—मोलोगिम, पृ० ५५

२. प्रेम और संगीत—अलकरोजी, पृष्ठ १५



उपासक बना रहा। यदि उसे अवकाश मिलता तो वह संगीत-क्षेत्र में कोई महान् कार्य अवश्य करता।'[1]

## निष्कर्ष

इन सबसे यह निष्कर्ष निकलता है कि इस युग में भजनों का प्रादुर्भाव हो चुका था। ईश्वर के दिव्य रूप को भजनों की लड़ियों में गूँथ दिया गया था। इन भजनों के द्वारा जहाँ एक ओर संगीत का प्रचार हुआ, वहाँ दूसरी ओर ईश्वरीय ज्ञान भी सामान्य लोगों में पहुँचा। इससे जनता का नैतिक चरित्र ऊपर उठने लगा और संगीत को एक नवीन शक्ति प्राप्त हो गयी। लोग संगीत की साधना में लग गये। फलस्वरूप मध्य-काल में मानव-जीवन पर जो अनैतिकता की धूल छा गयी थी, वह इस काल में हटने लगी। सूफियों, भक्तों और धर्म-प्रेमियों के संगीतमय प्रवचनों द्वारा भारतीय संगीत क्रमशः उच्चतर स्थिति को प्राप्त हो रहा था।

□ □ □

१. ताज-के-हिन्द—अलबरोवी

# मुगल काल–२

## (१७ वीं और १८ वीं शताब्दी)

### राजा मानसिंह तौमर

अकबर के काल से पूर्व, अर्थात् १५ वीं शताब्दी के अन्त और १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत की राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति बड़ी गड़बड़ थी। उत्तर में सिकन्दर लोदी और उसके सहयोगियों ने परस्पर युद्ध द्वारा जनता को पीड़ित कर रखा था। दक्षिण में बहमनी सुल्तान और विजयनगर के हिन्दू-राज्य में शत्रुता रहती थी। दोनों राज्यों में परस्पर युद्ध हुआ करते थे। बहमनी राज्य में देशी और हब्शी मुसलमानों तथा अरबी और फारसी मुसलमानों के दो दल बन गए थे। इन दोनों दलों में आपस में झगड़े होते रहते थे। फलस्वरूप बहमनी राज्य पाँच भागों में बँट गया था। जौनपुर,बिहार और बंगाल में पठान सरदार बराबर लूट-खसोट किया करते थे। गुजरात में महमूद बघर्रा ने रक्तपात मचा रखा था। मालवा में गयासुद्दीन खिलजी और उसके उत्तराधिकारी नसीरुद्दीन अत्यन्त ऐयाश और अत्याचारी शासक थे। राजस्थान में राणा कुम्भा का उसके पुत्र द्वारा विष देकर वध किया जाना तथा उसके उपरांत वहाँ अराजकता का उत्पन्न होना और ग्वालियर



पर पाँच बार बहलोल लोदी का आक्रमण होना, इत्यादि बातों से उस समय की भारतीय जनता की कठिनाइयों का कुछ आभास हो सकता है। ऐसी परिस्थितियों के मध्य ग्वालियर के संगीत-सम्प्रदाय का आरम्भ राजा मान तोमर के समय से होता है। उन्हीं के शासन-काल (१४८६–१५१६ ई०) में प्रसिद्ध नायक बख्शू रहते थे, जिनका सुमधुर संगीत तानसेन के बाद अपना अलग ही महत्त्व रखता है। बख्शू मान के पुत्र राजा विक्रमाजीत के दरबार में भी रहे। राजा विक्रमाजीत के सिंहासन से हटने के बाद वे कलिञ्जर के राजा कीरत के यहाँ चले गये। तदुपरांत उन्होंने गुजरात जाना स्वीकार किया, जहाँ वे सुलतान बहादुर (१५२६-३६) के दरबार में रहे।[1] लखनऊ के इस्लाम शाह भी संगीत के एक संरक्षक थे। उनके यहाँ रामदास और महापतर नामक दो गायक थे, जिन्होंने बाद में अकबर की नौकरी कर ली।

### बैजू

राजा मानसिंह तोमर कलाकारों का बड़ा सत्कार करते थे। उनके दरबार में अनेक संगीतज्ञ थे और वे स्वयं भी एक कुशल संगीतज्ञ थे। एक बार आप आखेट को गये। वहाँ राई ग्राम की एक गूजर बालिका के रूप-लावण्य,साहस और वीरता को देखकर उस पर मुग्ध हो गये तथा उससे बिवाह कर लिया। यह बालिका (जिसका नाम मृगनैनी रखा गया) भी संगीत-प्रेमी थी, अतः इनके विवाहोत्सव पर उस काल के प्रसिद्ध गायक बैजू को भी आमन्त्रित किया गया। बैजू के अद्भुद संगीत से मानसिंह तथा मृगनैनी, दोनों बड़े प्रभावित हुए। मृगनैनी ने

१. हिन्दू म्यूजिक फ्रॉम वेरियस आथर्स—एस०एम० ठाकुर, पृष्ठ २१३

बैजू से संगीत-शिक्षा ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की और मानसिंह ने उन्हें मृगनैनी का संगीत-शिक्षक नियुक्त कर दिया।

'भारतीय संगीत में बैजू कार्य स्तुत्य है। वह राजा मानसिंह के काल का चमकता हुआ रत्न है। ग्वालियर की पृष्ठ-भूमि को संगीतमय बनाने में बैजू का क्रियात्मक हाथ रहा.... उसकी प्रकृति बड़ी सरल और सादा थी।'[1] 'बैजू उत्तर-भारत के एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। उनका संगीतज्ञों और गायकों में बहुत मान था। उन्होंने अनेक लोकप्रिय गीत व ध्रुवपद लिखे हैं।'[2] इस प्रकार 'वे (बैजू) राजा मानसिंह तोमर के समकालीन थे और उनके दरबार के प्रसिद्ध गायक भी।'[3] बैजू को वीणा-वादन पर भी उत्तम अधिकार था।

इस काल में ग्वालियर के घर-घर में संगीत की स्वर-लहरियाँ झंकृत हो रही थीं। नारियाँ संगीतप्रिय ही नहीं, अपितु इस कला में निपुण भी थीं। संगीत के क्षेत्र में प्रति-योगितायें हुआ करती थीं। राजा मान सार्वजनिक संगीत-समारोह भी किया करते थे, जिनमें बाहर के अनेक कलाकार भाग लिया करते थे।

## गोपाल नायक

इस काल में 'नायकों में सबसे प्रसिद्ध दक्षिण-निवासी गोपाल हुए, जिन्होंने अलाउद्दीन के काल में यश पाया था।

---

१. इण्डियन म्यूजिक एण्ड इट्स हिस्टोरीकल डवलपमेंट्स—फ्रान्सीसी इतिहासकार फ्राइनोजीम

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास—गर्सादतासी, पृष्ठ १६१

३. दी आउट लाइन आफ इण्डियन म्यूजिक—डोजिक (Deegik), पृष्ठ २००



दिल्ली के अमीर खुसरो, जौनपुर के सुलतान हुसैन शर्की, ध्रुव-पद के प्रवर्तक ग्वालियर के राजा मानसिंह, बैजू और भानू, पांडवी, बक्सू और लोहंग समसामयिक थे। ग्वालियर के राजा मानसिंह के समय में जुरजू, भगवान, ढोढ़ी और ढालू का उल्लेख भी मिलता है।'[1]

## अकबर

इसके उपरांत 'अकबर (१५५०-१६०५ ई०) के काल में हिन्दुस्तानी संगीत की स्थिति में हम आश्चर्यजनक परिवर्तन पाते हैं।....मुसलिम विजेता न तो विद्या के प्रेमी थे और न उसके संरक्षक ही। मुसलमान शासकों ने स्वभावतः अपने ही सहधर्मियों को दरबार में संगीतज्ञों के पद पर नियुक्त किया और अपने प्रभु की इच्छापूर्ति के बहाने प्रचलित मतावलम्बी संस्कृत-ग्रन्थों पर मनमाना अत्याचार किया। जब हम 'आइने-अकबरी' में दिए हुए अकबर के प्रधान संगीतज्ञों की सूची पर दृष्टिपात करते हैं, तो वहाँ छत्तीस नामों में से चार या पाँच ही हिन्दू संगीतज्ञों के नाम दिखायी देते हैं।'[2]

इस काल में उत्तर-भारत के अनेक कलाकार शासकीय प्रलोभनों में फँसकर अपनी कला और धर्म को बेच चुके थे। इस युग में ईरानी तथा भारतीय पद्धतियों को मिलाकर संगीत की एक ऐसी पद्धति बनाई गई थी, जिसमें दोनों की विशेषताओं

---

१. ट्रीटिज आन दी म्यूजिक आफ हिन्दुस्तान —कैप्टिन विलर्ड, पृष्ठ १०७

२. ए हिस्टोरीकल सर्वे आफ दी म्यूजिक आफ अपर इण्डिया —भातखण्डे, पृष्ठ २५

का मिश्रण था। जब मुसलमान भारत में आये तो ईरानी संगीत-पद्धति पूर्ण रूप से विकसित थी। परन्तु यवनों को भारतीय संगीत की विशेषताओं से परिचित होने में अधिक समय नहीं लगा। उन्होंने न केवल इसको अपनाया, वरन् इसमें ईरानी परम्परा के तत्त्वों को सम्मिलित करके इसे समृद्ध भी किया। इस प्रकार लगभग एक हज़ार वर्षों से हिन्दू और मुसलमानों के सहयोग से संगीत ऐसी पूर्णता को पहुँच गया, जिसकी विश्व में तुलना नहीं की जा सकती।

इन परिस्थितियों में हमें यह मानना पड़ेगा कि मुसलिम संस्कृति से मिलकर भारतीय संगीत का सौंदर्य द्विगुणित हो गया और उसमें एक निखार आ गया। वस्तुत: उत्तर-भारतीय संगीत में ईरानी और अरबी संगीत के मिश्रित प्रभाव से एक ऐसा लावण्य प्रतिभासित होने लगा, जो उसके विकास का मुख्य साधन बना रहा। किन्तु दक्षिश-भारत का संगीत इस अपूर्व लावण्य से वंचित रहा, अतएव उसमें उत्तर-भारतीय संगीत के समान मोहकता तथा लोकप्रियता न आ सकी।[1]

इस प्रकार जब हम इस काल के भारतीय संगीत पर दृष्टि डालते हैं, तो दो स्पष्ट धाराएँ हमारे सन्मुख आ जाती हैं। पहली धारा वह है जो कि उत्तर-भारत में मुसलिम संस्कृति की पृष्ठभूमि पर बह रही थी और दूसरी धारा दक्षिण-प्रांत में अपने प्राचीन रूप को लिए हुए प्रवाहित हो रही थी। दोनों धाराओं में महान् व्यवधान पड़ चुका था।[2]

१. दी न्यू आउट लुक आफ इण्डियन कल्चर —बण्डारे प्रम्दा, पृ० २०

२. हिस्टोरीकल रिसर्च आफ इण्डियन म्यूजिक —डा० कलर्ट इप्मन, पृ० ११२



इस बात के अनेक प्रमाण हैं कि अकबर संगीत का प्रेमी ही नहीं, वरन् स्वयं भी संगीतज्ञ था। ....अबुल फज़ल कहता है कि शहनशाह को सगीत का इतना अधिक ज्ञान था, जितना कि अन्य को नहीं था। दरबार में संगीत प्रत्येक दिन होता था। इस संगीत की झकार पूर्वी राजाओं के यहाँ सदैव रहा करती थी। अकबर का पितामह बाबर, सगीत का प्रेमी ही नहीं, वरन् उत्तम कवि भी था।[1]

यदि ध्यान से देखा जाये तो ज्ञात होगा कि अकबर द्वारा निर्मित फतेहपुर सीकरी में हिन्दू-मुसलिम संस्कृतियों का मिश्रण है। लाल पत्थर, बुलन्द दर्वाजा तथा चौड़े-चौड़े आँगन हिन्दुओं के उच्च मान और प्रतिष्ठा के प्रतीक हैं। उनकी सादगी और सौंदर्य मुसलिम सस्कृत का द्योतक है। ठीक यही स्थिति संगीत के विषय में भी थी। भारतीय ध्रुवपद-शैली की रक्षा करते हुए रागों में ईरानी संगीत के मिश्रण से उसने सगीत के सौंदर्य को द्विगुणित कर दिया था।

## स्वामी हरिदास

अकबर स्वयं चित्रकला और संगीत का बड़ा प्रेमी था। वह मनोविनोद के लिए संगीत का प्रयोग करता था। परन्तु धार्मिक संगीत को बहुत श्रेष्ठ समझता था। उसने पचास वर्ष तक देश पर शासन किया। सौभाग्य से इसके काल में भारत के बड़े-बड़े धामिक महात्मा एवं संगीत के विद्वान् उत्पन्न हुए, जिनके कारण इस काल को स्वर्ण-युग कहना चाहिए। इस काल के अनेक बड़े संगीतज्ञों में स्वामी हरिदास जी (तानसेन

१. इण्डियन म्यूजिक, बी० ए० पिंगले (१८६८ ई०) का संस्करण फुटनोट पृष्ठ ३३६

के गुरु) का प्रमुख स्थान है। आप वृन्दावन में रहा करते थे। कहा जाता है कि स्वामी जी का गायन सुनने के लिए स्वयं अकबर को तानसेन का शिष्य बनकर वृन्दावन जाना पड़ा था।

## तानसेन

इसी समय के एक प्रसिद्ध आचार्य तानसेन थे। वे हिंदू थे और वृन्दावन के स्वामी हरिदास के शिष्य थे।[1] इन्हीं के समकालीन अकबर के दरबार में प्रसिद्ध बीनकार मिश्रीसिंह थे। इनका विवाह तानसेन की कन्या से हुआ था। बाद में मिश्रीसिंह मुसलमान बन गए। इन्हीं के वंश में मुहम्मद शाह (१७२० ई०) के समय में नियामत खाँ हुए, जो सदारंग के नाम से प्रसिद्ध हैं।

तानसेन के बड़े पुत्र विलास खाँ से प्रसिद्ध रबाबियों का घराना चला है और उनके दूसरे पुत्र सूरतसेन से सितारियों का, जो 'सेनिया घराना' नाम से प्रसिद्ध है।[2]

इनके अतिरिक्त इस काल के अन्य प्रसिद्ध कलाकारों में बाबा रामदास, नायक बक्सू, सुजानसिंह (सुजान खाँ), बिलास खाँ, लाल खाँ, बृजचन्द, श्रीचन्द और बाबा मदनराय के नाम उल्लेखनीय हैं।

इसी काल के अन्य प्रसिद्ध कवियों एवं संगीतज्ञों; जैसे सूरदास जी, मीराबाई, कबीरदास जी, तुलसीदास जी तथा

१. स्वामी हरिदास अंक (संगीत कार्यालय, हाथरस)

२. ध्वनि और संगीत, पृष्ठ २७३



राधावल्लभ सम्प्रदाय के एवं अष्ठछापी आचार्य गणों द्वारा निर्मित पदों के सामने उस काल के शृंगार-प्रधान गीत प्रभाव-शून्य होने लगे।

## वल्लभ सम्प्रदाय

इसी काल में महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टि-भक्ति एवं नवधा भक्ति में कीर्तन का समावेश किया था। पुष्टिमार्गीय सेवा-विधि में अष्टप्रहर की झाँकी के अनुकूल ही संकीर्तन एवं पदों का गायन होता था। अष्ठछाप के कवि सूरदास, कुम्भनदास, नन्ददास, छीत स्वामी, चतुर्भुजदास, गोविन्ददास एवं कृष्णदास कवि ही नहीं, महान् संगीतज्ञ एवं कीर्तनकार भी थे। स्वामी हरिदास एवं गोविंददास स्वामी के शिष्यत्व में तानसेन ने गान-विद्या सीखी थी। इसी सम्प्रदाय के श्री हरीराम व्यास ने 'राग-माला' पर एक शास्त्रीय ग्रन्थ रचा था।[1] मीरा, राजा आसकरण, गंग एवं ग्वाल इत्यादि भक्त भी संगीत के ज्ञाता थे। सूर की मल्हार, सूरसारंग, मीरा की मल्हार इत्यादि राग आज भी गाए जाते हैं। संत-संगीत में संगीत के भेद, अंग, नाद, ग्राम, बाईस श्रुतियाँ, इक्कीस मूर्च्छना, उनंचास कूटतान, सप्त-स्वरों के नाम, सप्तक, औडुव, आरोही के साथ-साथ ध्रुवपद और धमार का उल्लेख भी पदों में मिलता है।

ये समस्त कविगण कृष्ण-जन्म की बधाई, रास, होली, वसंत, वर्षा, मल्हार, हिंडोलना इत्यादि के अवसर पर अपने पदों

१. हरिमोहन मालवीय के लेख 'हिन्दी भक्त-साहित्य और संगीत' के आधार पर

द्वारा प्रभु को रिझाते थे। इनके पदों के लिए राग-रागिनियों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। पदों में चर्चरी ताल, एकताल, ध्रुवताल तथा झपताल इत्यादि के उल्लेख भी मिलते हैं। जिन वाद्यों का उल्लेख इन कवियों ने स्थान-स्थान पर किया है, उनमें झालर, बीन, रबाब, किन्नरी, स्वरमंडल, जलतरंग, पखावज, उपंग, शहनाई, सारंगी, कठताल, मुँहचंग, खंजरी, मृदंग, डफ, झाँझ, शंख, श्रृंगो, भेरी, नगाड़ा, दुंदुभी, ढोल, वेणु, पिनाक, मँजीरा, दमामा, मुरली इत्यादि हैं। इनके रास के पदों में ताताथेई, तत्थेई, ततंगथेई, ततथे, थेईततथेई, तकिट तकाकिट इत्यादि नृत्य के अनेक बोल तथा पारिभाषिक शब्द भी मिलते हैं।

दादूपंथ के गरीबदास और बनाजो भी संगीतज्ञ थे। वे स्वच्छन्द होकर गाते थे। यद्यपि उन्होंने भाव को गायकी से अधिक महत्त्व दिया था, परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वे संगीत के ज्ञाता नहीं थे। इन लोगों ने संगीत और जीवन को पृथक्-पृथक् नहीं समझा, इसलिए इन्होंने संगीत के विकास के लिए अलग से कोई प्रयास नहीं किया।

इस काल में वीणा के स्थान पर सितार और मृदंग के स्थान पर तबले का प्रयोग होने लग गया था। मध्यम श्रेणी के लोगों में खयाल और उच्च समाज में ध्रुवपद का प्रचार था। अकबर के दरबार में संगीतोत्सव भी हुआ करते थे, जिनमें दरबारी संगीतज्ञों के अतिरिक्त बाहर के संगीतज्ञ भी भाग लिया करते थे। समाज में बच्चे के जन्म से लेकर उसके विवाह तक संगीत का सुखद वातावरण तैयार कर दिया जाता था। नर-नारियों में भजन तथा पद खूब गाये जाते थे। संगीत



अपने पूर्ण यौवन पर था। संगीतज्ञों का समाज में बड़ा आदर किया जाता था। मुसलिम जनता के मुकाबले हिन्दू जनता को संगीत अधिक प्रिय था। हिन्दू संगीत को मोक्ष का साधन मानकर तपस्वी की भाँति उसकी साधना किया करते थे, लेकिन मुसलमानों ने संगीत को अपने जीवन में इतनी गहराई से नहीं अपनाया था।[1] फिर भी भारतीय संगीत की दृष्टि से अकबर के काल को स्वर्णयुग कहा जा सकता है। इस युग में भारतीय संगीत की लगभग सभी प्रवृत्तियों का विकास सुचारु रूप से हुआ। इस काल की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि भारतीय संगीत का प्रचार देश के कोने-कोने में हुआ और साथ में संगीत की पवित्रता और उज्ज्वलता भी स्थिर बनी रही।[2] दक्षिण-भारतीय संगीत के लिए यह युग अंधकार का युग रहा, अतः वह शास्त्र से अलग हटता गया और उसका परिवर्तन लोकरंजक न रह सका।[3]

## जहाँगीर

अकबर की मृत्यु के उपरांत २० अक्तूबर, सन् १६०५ ई० को उनके पुत्र जहाँगीर (१६०५-२७) गद्दी पर बैठे। 'जहाँगीर बादशाह बड़ी शौकीन तबियत का आदमी था। उसके दरबार में एक-से-एक सुन्दर नर्तकियाँ और गायक रहते थे। संगीत ही उसका जीवन था। वह संगीत में इतना डूब जाता था कि फिर उसे खाने-पीने की सुध-बुध कुछ भी नहीं रहती थी।

१. ताहिले माहोल—अरब विद्वान् निजामुद्दीन।
२. दी साइंस आफ इण्डियन म्यूजिक—आर्वो बार्ब, पृष्ठ ४०।
३. संगीत शास्त्र, के० वासुदेव शास्त्री।

बास्तव में संगीत ही उसका स्फूर्तिपूर्ण जीवन था। यदि हम कहें कि उसके जीवन का एकमात्र प्रकाश संगीत ही था तो अतिशयोक्ति न होगी।..........संसार में यदि उसे कोई वस्तु प्रिय थी तो वह शांति और संगीत थी। किन्तु फिर भी अपनी विवेक बुद्धि के विरुद्ध जहाँगीर को युद्ध करना पड़ा।'[1]

जहाँगीर अपने पितामह के समान ही कला और साहित्य का प्रेमी था। उसे सितार-वादन से बहुत प्रेम था। अतः इस युग में सितार-वादन की प्रगति खूब हुई। गीतों में उसे शृंगार-रस अधिक प्रिय था। अतएव इस काल में शृंगारिक संगीत का सृजन अधिक हुआ।

## नूरजहाँ

जहाँगीर के जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना उसका नूरजहाँ से विवाह होना है। 'नूरजहाँ संगीत की बड़ी प्रेमिका थी। सध्या के समय वह प्रायः कविता लिखती और उसको गाती थी। गुनगुनाकर लिखने की उसकी आदत थी.......कहते हैं कि उन दिनों नूरजहाँ से अधिक सुन्दर कोई अन्य नारी नहीं थी। उसका सौंदर्य पूर्णरूप से संगीतमय था। ........प्रातःकाल उद्यान में घूमते समय उसे गाना बहुत प्रिय लगता था। वह एकान्त में गाया करती थी। जब वह गाती थी तो उसकी स्वरलहरी आकाश में गूँज जाती थी। जहाँगीर को नूरजहाँ से संगीत में बड़ी सहायता मिली। नूरजहाँ ने भी जहाँगीर

---

१. दी डंस्क्रिप्शन आफ दी मुगल पीरियड—वर्नाजोन्स।



की संगीत-प्रियता को अत्यन्त पसन्द किया था। इनके दाम्पत्य जीवन की नीवँ वास्तव में संगीत की विशाल पृष्ठभूमि पर ही आधारित थी।' दरबारी संगीत को दोनों मिलकर सुनते थे। इनकी संगीत-प्रियता के कारण इनके दरबार में बिलास खाँ, जहाँगीर दाद, छत्तर खाँ, परवेजदाद, खुर्रमदाद, मक्खू, हमजान इत्यादि उत्तम संगीतज्ञ थे। इन्हीं के काल में संगीत के कुछ उत्तम ग्रन्थ मौलिक रूप से लिखे गये तथा संगीत दर्पण' नामक ग्रन्थ का गुजराती और हिन्दी में अनुवाद भी हुआ।

ग़ज़ल और रेख़ता के अतिरिक्त जहाँगीर को भजन भी प्रिय थे। उसे वे ही ग़ज़लें अधिक प्रिय थीं, जिनमें भारतीय वातावरण का सजीव चित्रण हुआ हो। उसके दरबार में सभी धर्मावलम्बियों का समान आदर था। वह भारतीय संगीत का ऐसा रूप चाहता था, जिसमें अरबी संगीत के अन्दर भारतीय संगीत के श्रेष्ठ सिद्धांतों को इस प्रकार मिला दिया जाये कि जो नया रूप निर्मित हो, उसमें भारतीय संगीत का सौंदर्य ही सर्वोपरि दिखायी दे। अतः इस काल में जो संगीत का समन्वित रूप निर्मित हुआ, उसमें भारतीय संगीत के मौलिक सिद्धान्तों की पूर्णरूपेण रक्षा की गयी। इस प्रकार संगीत को सजीव बनाने के लिए जहाँगीर-युग का विशेष हाथ रहा और उसने भारतीय संगीत को विकास की उच्चतम स्थिति तक पहुँचाने का सफल प्रयत्न किया।

---

१. दी आउट लाइन आफ इण्डियन म्यूजिक एण्ड इट्स क्रिटिक्स —अर्नेलगीस, पृष्ठ १८०।

# मुगल काल-३

## शाहजहाँ

जहाँगीर की मृत्यु के बाद उसका पुत्र शाहजहाँ सन् १६२८ ई० में गद्दी पर बैठा। यह अपने पिता जहाँगीर की भाँति ही संगीत-प्रेमी था। जहाँगीर को तो सितार से केवल प्रेम ही था, किंतु यह स्वयं सितार-वादन तथा गायन, दोनों में प्रवीण था। जो भी उसका गाना सुनता, वही उसके शानदार व्यक्तित्व का मुरीद बन जाता। उसके काल में संगीत का जितना विकास हुआ, उतना जहाँगीर के काल में भी नहीं हो पाया था। वह संगीत-सम्मेलन और संगीत-प्रतियोगिताएँ भी कराया करता था। उत्तम कलाकारों को पुरस्कार भी भेंट किया करता था। दरबारी संगीत-समारोहों में वह इस बात का ध्यान रखता था कि कहीं हिन्दू संगीतज्ञों की उपेक्षा न हो जाय। उनको उसी सम्मान के साथ समारोहों में बुलाया जाता था, जैसे कि मुसलमान कलाकारों को।[1]

उसने अपने दरबारी गायक दैरंग खाँ और लाल खाँ को चाँदी से तुलवाकर प्रत्येक को साढ़े-चार हजार रुपयों का पुरस्कार दिया था और दोनों को 'गुणसमुद्र' की उपाधि से विभूषित किया था। इनके अतिरिक्त जगन्नाथ और रामदास

१. दी स्टडी आफ इण्डियन म्यूजिक—कैप्टिन ओस्तवाल, पृष्ठ १०४।



महाट्टेर नामक विद्वान इसके दरबार में और थे। इनमें जगन्नाथ को 'कविराज' की उपाधि दी गई थी।

अब तक उच्च संगीत का सम्बन्ध ब्राह्मणों से था, क्योंकि इस विद्या को पवित्र और दिव्य माना गया था। इसे इस समय तक भी 'पंचम वेद' कहा जाता था। इसलिए ब्राह्मणों ने इसे अपने तक ही सीमित रखा और इसी लिए लोगों की उनके प्रति श्रद्धा भी थी। किन्तु इस काल में संगीत अपने कलात्मक रूप को छोड़कर व्यवसाय के रूप में आ गया था। अब संगीत जाति-पाति के बन्धनों को तोड़कर निम्न वर्ग के लोगों की वस्तु बन चुका था। इस काल में ऐसे संगीतज्ञ अधिक हो गये थे, जो बिलकुल अशिक्षित थे। न तो इन्हें पढ़ना-लिखना आता था और न संगीत के शास्त्रीय पक्ष का ही कुछ ज्ञान था। परन्तु फिर भी ये संगीत के महान् आचार्य समझे जाते थे। इन कलाकारों में अधिकांश मुसलमान ही थे।

जब इन अशिक्षित यवन संगीतज्ञों को धन और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई तो ये विलासी बनने लगे। प्रायः सब संगीतज्ञ मदिरा का सेवन करने लगे। ये लोग शराब के नशे में ही गाते थे। विलासी होने के कारण संगीत नर्तकियों तथा गणिकाओं के हाथों में जा चुका था। ये नर्तकियाँ तथा गणिकायें भी मदिरा का सेवन करने लग गयी थीं। दरबार में जो नाच-गायन के आयोजन होते थे, उनमें कलाकार मदिरा पीकर ही अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। प्रसिद्ध यात्री टामसरो लिखता है कि 'बड़े-बड़े नगरों में; जैसे दिल्ली, आगरा, लखनऊ, बनारस, लाहौर इत्यादि में नाचनेवाली स्त्रियाँ विशाल गृहों में रहा करती थीं। इनके मकान कई-कई मंजिल के हुआ करते थे। ये स्त्रियाँ साधारण जनता को नाच-गाकर प्रसन्न किया करती थीं।

इनके घरों पर संध्या के छह बजे से भीड़ होना आरम्भ हो जाती थी और रात्रि के दो बजे तक खूब चहल-पहल रहा करती थी। उनके घरों पर सरकारी पदाधिकारी तथा उच्च वर्ग के लोग भी जाया करते थे। ये स्त्रियाँ बड़ी मालदार हुआ करती थीं।

शाहजहाँ क काल म पूर्वी भारत में 'अचल' नाम का एक बड़ा मेला हुआ करता था, जो तीन-चार दिनों तक चला करता था। यह मेला पूर्ण संगीतमय होता था। इसमें दूर-दूर के संगीतज्ञ एकत्र हुआ करते थे। साधारण जनता इस मेले में खूब आनन्द लिया करती थी।

संगीत में विलासिता का प्रवेश हो जाने के कारण दो बातों की विशेषता होगयी थी। एक तो यह कि संगीत की विलासिता को देखकर मंदिरों के पुजारी भी भोग-विलास में लिप्त रहने लगे और वे छोटे-छोटे प्रलोभनों में फंस जाते थे। फलस्वरूप मन्दिरों में भी विलासिता घुस गई थी। अब मन्दिरों में जो गायन व नृत्य चलता था....उसमें भजनों का स्थान ग़ज़लों ने ले लिया था। इन ग़ज़लों में भगवान् की प्रेम-क्रीड़ाओं का वर्णन किया जाता था। दूसरे, अशिक्षित लोगों में संगीत का अधिक प्रचार हो जाने के कारण उत्तर-भारतीय संगीत और कर्नाटिक-संगीत-पद्धतियों के भेदों का अन्तर अधिक स्पष्ट हो गया था।

अब यदि शाहजहाँ के काल के संगीत पर एक दृष्टि डालें तो हम निस्संकोच कह सकते हैं कि भारतीय संगीत का विस्तार तो इस युग में अधिक हुआ, किंतु इसका विस्तार-क्षेत्र उच्च-वर्ग से हटकर निम्न और मध्यम वर्गीय लोगों में पहुँच



ही। इन लोगों में राग रागिनियों का ज्ञान बड़ा न्यून था। इन्होंने संगीत की शुद्धता की उपेक्षा कर दी थी और केवल कण्ठ में मिठास तथा ध्वनि की मधुरता पर बल दिया। इस प्रकार भारतीय संगीत का कलात्मक रूप धूमिल होता जा रहा था और संगीत को व्यवसाय के रूप में ग्रहण किया जाने लगा था। इस काल में एक ऐसा वर्ग भी बन गया था, जो केवल संगीत के द्वारा ही अपनी उदर-पूर्ति करता था। यह व्यवसायी संगीतज्ञों का वर्ग समाज में उपेक्षणीय था।'[1]

यहाँ यह बात और ध्यान रखनी चाहिए कि शाहजहाँ ने भारतीय संगीत की पवित्रता की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। इसका कारण यह था कि वह भारतीय संगीत की दार्शनिक पृष्ठभूमि से अपरिचित था। उसने तो भारतीय संगीत को भी अरब के संगीत की भाँति केवल थकावट दूर करने और मनो-रंजन करने का एक साधन-मात्र समझा। इसलिए 'इस काल में भारतीय संगीत को नवीन साँचे में ढाला गया। उसमें नवीन-नवीन रागों का निर्माण किया गया। इसमें अरबी व ईरानी धुनों का पुट दिया गया। ऐसा करने से भारतीय संगीत के सौंदर्य में अभिवृद्धि हो गयी और इसमें एक नवीन आकर्षण भी उत्पन्न हो गया। परन्तु साथ ही इसके आत्मिक सौंदर्य के विकास की धारा समाप्त हो गयी।'[2]

---

१. हिन्द का राजनैतिक इतिहास (अरबी विद्वान्) सुलेमान जुबेरा।
२. दी डायरी आफ दी यूनीवर्सल म्यूजिक—ओलीवर पाइजा।

औरंगज़ेब 1658

ऐसे ही काल (सन् १६५८ ई०) में औरंगजेब गद्दी पर बैठे थे। वे मनुष्यों को चरित्रवान देखना चाहते थे। वे स्वयं भी साधारण जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्तियों में से थे। उन्हें विलासिता से अत्यन्त घृणा थी। दुर्भाग्य से उन्हें भारतीय संगीत के धार्मिक रूप में सुनने का सुअवसर प्राप्त न हो सका। वे जिस संगीत के सम्पर्क में आये, उसमें उन्होंने विलासिता और चरित्रहीनता को ही पाया। उन्होंने देश में प्रचलित इस संगीत को ही भारतीय संगीत का वास्तविक रूप समझा। उन्हें उसमें पवित्रता नाम की झलक तनिक भी दिखाई नहीं दी। अतः उन्हें विश्वास हो गया कि संगीत मानव को चरित्रहीन, कर्तव्यच्युत, अधर्मी और पशु-तुल्य बना देता है। बस, फिर क्या था मुसलमान पैगम्बरों के आदर्श पर उन्होंने संगीत और नृत्य को नष्ट करने का पूरा प्रयत्न किया। उन्हें संगीत से अत्यन्त घृणा उत्पन्न हो गयी इसलिए उन्होंने संगीत को 'शैतान' कहा। औरंगजेब की इस कठोरता से संगीतज्ञ असंतुष्ट हो गए और शान्ति की रक्षा के लिए उन्होंने संगीत के कार्यक्रम बन्द कर दिए। परन्तु सम्राट् तो इस कला का अन्त करने पर तुले हुए थे, अतएव वैसे ही निर्मम आदेशों का प्रचार हुआ। संगीतज्ञों के जल्सों पर नगर-रक्षकों के आक्रमण हुए और उनके वाद्ययंत्र जला दिए गये।

एक बार कुछ दरबारी-गायक रोते-पीटते बादशाह के उस झरोखे के नीचे से निकले, जिसमें बैठकर शहनशाह जनता को प्रतिदिन दर्शन दिया करते थे। उनके साथ शव था, अतः ऐसा प्रतीत होता था कि लोग किसी बड़े व्यक्ति की शव-यात्रा में जा रहे हों। यह इस कारण से किया गया था कि बादशाह यह जान सकें कि उनके काल में संगीत की कैसी शोचनीय दशा है। बादशाह ने उसे देखकर लोगों से पूछा कि यह किस की मृतक क्रिया करने जा रहे हैं? इस पर उन्हें उत्तर मिला कि लापरवाही और राज्याश्रय न मिलने के कारण संगीत इस संसार से मर चुका है। अतः यह लोग उसकी अन्तिम किया करने जा रहे हैं। बादशाह तुरन्त बोल उठे 'बड़ा अच्छा है। कब्र तो इतनी गहरी खोदना कि जिसमें से न तो संगीत ही और न उसकी गूँज ही सुनायी दे सके।''[1]

'सम्राट् ने संगीतज्ञों को यह समझाने का प्रयत्न किया कि वे लोग गलत रास्ते पर हैं। और, जिन लोगों ने संगीत को छोड़ दिया, उन्हें पेन्शन देकर सम्मानित किया गया।'[2] लेकिन 'औरंगजेब' की इस नीति के विरुद्ध भी अनेक मुसलमानों ने हिंदू-संगीत का अध्ययन किया और राग-रागिनियों की रचना की।[3]

औरंगजेब की मृत्यु सन् १७०७ ई० में हो गयी थी। 1707 इसके उपरान्त १८५७ ई० तक औरंगजेब के दस उत्तराधिकारियों ने दिल्ली पर शासन किया। इस काल में यद्यपि संगीत का प्रचलन रहा परन्तु उसकी उन्नति की गति पहले की भाँति तीव्र न हो सकी। १८ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुसलमानों की शक्ति का ह्रास हुआ और देश अँग्रेजों के अधिकार में क्रमशः आने लगा।

---

१. यूनीवर्सल हिस्ट्री आफ म्यूजिक —एस० एम० टैगोर, पृष्ठ ५८
२. ए शार्ट हिस्टोरीकल सर्वे आफ दी म्यूजिक आफ अपर इण्डिया, भातखण्डे—हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ३८
३. भारतीय संगीत का इतिहास —उमेश जोशी पृष्ठ २१०

## ज़ेबुन्निसा

१७वीं शताब्दी में सम्राट् औरंगजेब की पुत्री दिल रसन-बानू, जो जेबुन्निसा के नाम से प्रसिद्ध है, एक प्रसिद्धसंगीतज्ञा थी। वह अपना अधिक-से-अधिक धन विद्वानों और कलाकारों पर व्यय किया करती थी। वह साधारण वेश-भूषा में रहा करती। वैभव, विलास से उसे चिढ़ थी। उसके महल में संगीत और साहित्य की पुस्तकों का एक पुस्तकालय था। 'वह संगीत और कविता की बड़ी मर्मज्ञ थी। संगीतज्ञों का बड़ा सम्मान करती थी। उनकी समय-समय पर सहायता करती थी। उसका कण्ठ बड़ा मधुर था। वह ग़ज़ल अधिक लिखती थी। उस समय उसकी ग़ज़लों का प्रचार सर्व साधारण लोगों में खूब हो रहा था।'[1]

## मुहम्मदशाह 'रंगीले'

औरंगजेब के बाद मुहम्मद शाह 'रँगीले' (सन् १७१९ ई०) वे अन्तिम बादशाह थे, जिनके दरबार में प्रसिद्ध संगीतज्ञों को आश्रय मिला। अब भी ऐसे अनेक गाने मिलते हैं, जिनमें उनका नाम मिलता है। इन्हीं के राज्य-काल में प्रसिद्ध गायिका शोरी ने टप्पा-गायकी को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया था। यह कहा जाता है कि शोरी के पति गुलाम नबी ने गीतों की रचना की और उसे अपनी पत्नी के नाम में जोड़ दिया। हिन्दू और फारस के संगीत का मिश्रण इस काल की प्रमुख विशेषता थी। शास्त्रीय संगीत के कुछ प्रकारों के नाम फारसी में ज्यों-के-त्यों रहे और कुछ को पूर्णतया नए नाम दिए गए। जैसे त्रिवट, तराना, ग़ज़ल, रेखता, कौल, क़लबाना, गुलनक्श इत्यादि।'[2]

१. दी हिस्ट्री ग्राउण्ड आफ इण्डियन म्यूज़िक —जार्ज एवोल, पृष्ठ ४०।
२. यूनीवर्सल हिस्ट्री आफ म्यूज़िक—एस० एम० ठाकुर, पृ० ५८।



'सदारंग (जिनका असली नाम नियामत खाँ था) और इनके भाई अदारंग भी इन्हीं के राज्य के प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। सोज और मरसिया गाने के प्रकारों का प्रचार भी इसी काल में हुआ था। नूर खाँ, लाद खाँ, प्यारेखाँ, जानी, गुलाम रसूल, शक्कर, मक्खन, तीथू (Tithoo), मिट्ठू, मुहम्मद खाँ, छज्जू खाँ इस काल के प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे।'[1] उमराव खाँ, मेढ़ो बाई और खुशाल खाँ भी इसी काल के उत्तम संगीतज्ञ थे।

'इन दिनों में भी स्त्री और पुरुष दोनों वर्गों के ऐसे संगीतज्ञ मिलते हैं, जिन्हें शास्त्र का कोई ज्ञान न होते हुए भी कंठ-माधुर्य, कमनीयता एवं कुशलता का इतना ज्ञान रहता है कि वे यूरोप के प्रथम श्रेणी के चारणों से टक्कर ले सकते हैं।'[2]

मोहम्मद शाह के बाद सम्राट बहादुर शाह इस काल के एक और ऐसे बादशाह थे, जो शायर होने के साथ उत्तम संगीतज्ञ भी थे। ये 'जफर' नाम से कविताएँ लिखा करते थे। इनके दरबार में अनेक संगीतज्ञ रहा करते थे। काशी के प्रसिद्ध जी तथा उनके दो भाई विश्वेशर मिश्र और मनोहर मिश्र इन्हीं के दरबार में रहा करते थे।

१. संगीत आफ इण्डिया —अतिया बेगम, पृष्ठ १७
२. ट्रीटिज ऑन दी म्यूज़िक आफ हिन्दुस्तान —कैप्टिन विलर्ड

□ □ □

# मध्यकालीन संगीत पर एक दृष्टि
# तथा
# अन्य प्रांतों में संगीत की स्थिति

## संगीत का अन्य कलाओं पर प्रभाव

शाहजहाँ के काल में संगीत ने जो करवट बदली थी उसका प्रभाव अधिकांश रूप से लगभग सभी भारतीय कलाओं पर हुआ। उदाहरण के लिए भवन-निर्माण-कला में जो लाल पत्थर था, उसका स्थान श्वेत संगमरमर तथा अन्य रंगीन पत्थरों ने ले लिया था। इसके उदाहरण ताज और एतमातुद्दौला हैं। यही नहीं वरन् इन भवनों के अन्दर की दीवारों में भी बहुमूल्य रंगीन पत्थरों से ही बड़े आकर्षण ढंग से उत्तम फूल-पत्तों की नक्काशी की गई। यही पच्चीकारी या नक्काशी खयाल-गायन के द्वारा संगीत में भी प्रवेश कर गई। अब तक जो ध्रुपद-नायकी की गति व लयकारी में स्वरोच्चारणों के ढंग में गंभीरता थी वह इस काल में आकर, खयाल के माध्यम से गीतप्रधान सौन्दर्य, कोमलता, प्रफुल्लता और चपलता में परिणत हो गई। पखावज में खुले बोलों का जो गाम्भीर्य था, उसके स्थान पर तबले के बन्द बोलों की चपलता ने पूर्ण रूप से अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। तानों का प्रयोग, भवनों की भाँति संगीत को सजाने के उद्देश्य से किया जाने लगा था।



ज्यों-ज्यों मुगल-साम्राज्य की अवनति हो रही थी, त्यों-त्यों इन भवनों में होने वाली पच्चीकारी के अन्तर्गत, कल्पना-शक्ति को प्रसन्नता प्रदान करने वाली और गुदगुदाने वाली नक्काशी का प्रवेश तीव्र गति से बढ़ रहा था। ठीक यही स्थिति खयालों में गाई जाने वाली तानों के अन्दर भी बन गई थी। तानों के भिन्न-भिन्न प्रकार बनने प्रारम्भ हो गए थे। जिस प्रकार किसी नक्काशी से आनन्द लेने के लिए उसकी बारीकियों को समझना और उनका सूक्ष्म अध्ययन आवश्यक-सा था, इसी प्रकार तानों का आनन्द लेने के लिए उनके स्वरों की रचनाओं का अध्ययन करने पर ही उनसे आनन्द ग्रहण करना संभव था। जिस प्रकार इन नक्काशियों में अनेक प्रकार के डिजायनों को सुन्दर ढंग से संजोकर एक पूर्ण डिजायन बनाया जाता था, ठीक वही प्रवृत्ति संगीत के ठुमरी-गायन में उत्पन्न हो गई। ठुमरी में अनेक प्रकार के ऐसे छोटे-छोटे स्वर-समुदायों की रचना की गई जो कि चित्ताकर्षक होने के साथ-साथ मन को प्रसन्नता प्रदान करने वाले हों। परन्तु साथ ही संगीत के उस गुण की, जिससे मनुष्य की आत्मा आनन्दित होती है, अवहेलना होती चली गयी। फलस्वरूप इस काल से, संगीत केवल मन को प्रफुल्ल करने वाली वस्तु रह गया और उसका आत्मा से सम्बन्ध हटता चला गया।

यह स्थिति उत्तर भारत में ही नहीं रही वरन् दक्षिण में भी प्रवेश कर गयी। वहाँ जो भी मन्दिर इस काल में बने, उनमें दीवारों पर इतनी अधिक मूर्ति-रचना और नक्काशी हुई कि एक इंच स्थान भी इनसे रहित नहीं मिलता। इन मन्दिरों को बनाने वालों का ध्येय केवल स्थान को घेरना ही नहीं था

वरन् उनकी इच्छा थी कि इन स्थानों को देखने वाले व्यक्तियों के नेत्रों को तनिक भी चैन न मिले। ठीक यही स्थिति दक्षिणी संगीत में भी प्रवेश कर गई। वहाँ के गायन में गमकों का इतना बाहुल्य हो गया कि उसका पूर्ण आनन्द प्राप्त करने के लिए श्रोताओं के कानों को निरन्तर प्रयत्न करना पड़ता है।

इस प्रकार के परिवर्तन की प्रवृत्ति केवल संगीत और भवन-निर्माण-कला या मूर्ति-कला तक ही सीमित नहीं रही, वरन् साहित्य और चित्रकला पर भी इसका प्रभाव पड़ा। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इस काल का वातावरण विलासिता के कुहरे से आच्छादित हो चुका था। अधिकांश हिंदी साहित्यकार भी राज्याश्रय तक ही सीमित थे। निराश जनता में आशा और प्रेम का संचार करनेवाली राधा-कृष्ण की भक्ति अब शृंगारिक भावना का स्पर्श पाकर कलुषित हो चुकी थी। चारों ओर रीतिकालीन कवि और आचार्य सेनानी, लक्षण ग्रन्थों के धनुषों पर अलंकारों एवं रसों को बाण-वृष्टि से साहित्याकाश को तिमिराच्छन कर रहे थे। शृंगार की रसमयी प्रवाहधारा में समस्त कवि-वृन्द-समाज डुबकियाँ लगा रहा था। अतः संगीतज्ञों की 'ध्रुवपद' की वह कविता जिसमें ईश्वर-स्तुति का वर्णन रहता था, खयाल की शृंगारमयी, कोमलकांत पदावली में परिवर्तित हो गई। संस्कृत के ध्यान-श्लोकों को हिन्दी कवियों ने नायक-नायिका-भेदों में बदल दिया। उन श्लोकों में वर्णित विशुद्ध प्रेम का रूप, स्त्री-पुरुषों की अनुचित प्रणय-लीलाओं में गाया जाने लगा। जिन विभिन्न रागों का प्रयोग मन की अनेक वृत्तियों अथवा भावनाओं के प्रदर्शन के लिए किया जाता था, अब उन रागों को धुन, गीत, मौसम, समय और वर्ण के आधार पर चित्रमय रूप दे दिया गया। इस प्रकार रागों में



दिए गए भावों को चित्र द्वारा मूर्त रूप देकर अधिक प्रभावशाली बनाने का प्रयत्न किया गया।

## प्रान्तीय लोक-संगीत

इस काल में भारत के अन्य प्रान्तों में लोक-संगीत का रूप अलग पनप रहा था। इस अध्याय में उस पर भी थोड़ा विचार कर लेना उचित ही होगा। तो आइए, क्रम से प्रत्येक प्रान्त के संगीत का संक्षिप्त सिंहावलोकन करें।

## काश्मीर और लद्दाख

काश्मीर और लद्दाख में बौद्ध भिक्षुओं के धार्मिक नृत्य अधिक प्रचलित थे। इन नृत्यों के अवसर पर साल-भर तक मठों में बन्द रहने वाले लामा लोग भी बाहर निकल आते थे। काश्मीर के प्रमुख लोक-नृत्यों में 'रुफ' तथा गायनों में 'छकरी' गीत और 'सहरवी' अधिक प्रचलित हैं।

## कांगड़ा

कांगड़े में एक संगीतमय उत्सव 'रली का त्योहार' आज भी बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है, जो वहाँ के लोगों की संगीतप्रियता का द्योतक है।

## हिमालय की तराई

हिमालय की तराई का 'सालभंजिका' एक संगीतमय उत्सव था। भारतीय संगीत के इतिहास में यह उत्सव अपना एक विशेष स्थान रखता है। इस उत्सव में स्त्री-पुरुष मिलकर

नाच-गाना करते हुए पुष्पचयन किया करते थे। 'सालभंजिका' नृत्य गीतमय होता था। नृत्य करती हुई नारियाँ गायन करती थीं। मध्यकालीन युग में सालभंजिका तथा इससे मिलती-जुलती अनेक उद्यान-क्रीड़ाएँ हिमालय की तराई में होती थीं। यह नृत्य इतना सुन्दर था कि हिमालय की तराई की सीमाओं को पार करके बंगाल, बिहार तथा उत्तरप्रदेश के पूर्वी भागों में पहुँच चुका था।'

## उत्तर-प्रदेश

उत्तर-प्रदेश में आल्हा-ऊदल की वीररस-पूर्ण गाथा तथा ढोला-मारू ग्रामीणों में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। यह विशेष रूप से सावन मास में गाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त मलूकदास, रैदास, दूल्हनदास, ध्रुवदास, नरहरिदेव, नागरीदास इत्यादि अनेक संतों ने संगीत के प्रचार में योग दिया। इनके साथ-साथ गाली, बन्ना, सोहर, चैती और पूर्वी गीतों के प्रकार सामान्य जनता में प्रचलित थे। ब्रज में रसिया और फाग बड़े उत्साह से गाये जाते हैं।

## पंजाब

पंजाब में नानकाना साहब में, जिसे पहले तलबंडी कहते थे, सिखों के प्रथम गुरु नानक साहब का (१४६९ ई० में) जन्म हुआ। इनके द्वारा समस्त पंजाब में संगीत का खूब प्रचार हुआ। गुरु नानक ने अपने भजनों द्वारा मनुष्यों को मिथ्या-डम्बरों, पाखंडों, अंधविश्वासों, एक-दूसरे के प्रति द्वेष, ईर्ष्या

१. दी बंक ग्राउण्ड आफ इण्डियन कल्चर —हर्नीवायल



और घृणा के भावों से दूर रहकर आपस में प्रेम-भावना, सत्यता और बधुत्व को अपनाना सिखलाया। इनके बनाए भजन पंजाब के घर-घर में गाए जाने लगे। इन्हीं भजनों की पृष्ठभूमि पर 'किनड़ी', 'जिकड़ा' और 'मलडा' नामक नृत्यों का सृजन किया गया।

इनके अतिरिक्त पंजाब में सन्त बाबा फरीद के पद, कवि हरवंश के गीत और जयदेव के 'गीतगोविंद' के गीतों का प्रचार भी खूब रहा। इस काल में विवाह के अवसर के गीत, झूले के गीत, ढोलक के गीत, कव्वाली और हीर के साथ-साथ 'भाँगड़ा' जैसे अन्य प्रकार के नृत्यों का प्रचलन भी हो चला था।

## सिंध

साथ ही दूसरी ओर सिंध में प्रसिद्ध संगीतज्ञ सदना के गीत बड़े प्रचलित हुए। इनके गीतों पर 'भाव', 'कला' एवं 'मुक्त' नृत्यों की रचना की गयी और इनके आधार पर मनुष्यों के आध्यात्मिक जीवन को उन्नत किया गया।

## गुजरात

गुजरात में नरसी मेहता के कीर्तनों द्वारा संगीत का प्रचार खूब हुआ। मेहता जी गायन और वादन, दोनों में बड़े प्रवीण थे। गुजरात का प्रसिद्ध नृत्य 'गरबा' इन्हीं के पदों पर निर्मित हुआ। यह नृत्य इतना अधिक लोकप्रिय हुआ कि अनेक प्रांतों में यह किसी-न-किसी रूप में प्रचलित हो गया। जैसे महाराष्ट्र का 'गोफा', उत्तरप्रदेश में 'रास' के विभिन्न रूप, आन्ध्र में 'कोलाटम', मालवा में 'गड़बा नृत्य' एवं 'मटकी नृत्य' और पंजाब का 'गिद्धा' गरबा से बहुत मिलते हैं।

## सौराष्ट्र

सौराष्ट्र के संगीत में 'दूहा' गीतों का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है । इन गीतों में हमें मानव-जीवन का जितना लम्बा विस्तार मिलता है, उतनी स्वाभाविकता के साथ छोटे गीतों में अन्यत्र देखने को नहीं मिलता । सौराष्ट्र की नारियाँ इन गीतों को गाने में बड़ी कुशल होती थीं । मध्यकालीन युग में नारियों का यह गीत एक प्रमुख गान था ।[1]

## राजस्थान

मध्यकाल में राजस्थान में चन्द्रसखी नामक एक बड़ी लोकप्रिय संगीतज्ञा थीं । इनके गीत और भजन आज भी राजस्थान के घर-घर में सुनायी देते हैं । इन गीतों की भाषा सरल और भावानुकूल है । इन्होंने राजस्थान के वातावरण को संगीतमय बनाने में अद्वितीय कार्य किया है ।

उदयपुर के राणा भोजराज की पत्नी मीरा के भवन और गीत उत्तरभारत, राजस्थान और गुजरात में जनसाधारण के लिए गेयत्व की दृष्टि से अद्वितीय लोकप्रिय हुए । लोकगीतों में मांड, झूमर, गनगौर और सावनी गीत अधिक प्रसिद्ध थे ।

## मध्यप्रदेश

मालवा में मध्यकालीन युग की रूपवती नामक एक महान् संगीतज्ञा थी । वह मालवा-नरेश बाजबहादुर की पत्नी थी ।

१. दी बंक ग्राउण्ड आफ इण्डियन कलचर —टर्नीवाल



बाजबहादुर भी संगीत का महान् मर्मज्ञ था । उसकी संगीत-कला पर मुग्ध होकर ही उसने उसको अपनी रानी बनाया । रूपवती वीणावादक भी थी । उसने भारतीय संगीत के विकास में बड़ा योग दिया । उसे राग-रागिनियों का पूरा-पूरा ज्ञान था ।[1]

मध्यप्रदेश और राजपूताने में गायकों के दो वर्ग थे, जिन्हें 'चारण' और 'भाट' कहते थे । इनके अतिरिक्त गायकों में एक वर्ग 'ढाढ़ी' और था । यह लोग अपने आश्रयदाताओं के गुणों का बढ़ा-चढ़ाकर गायन करते थे । 'तुरई' और 'सींग' वाद्यों का अधिक प्रचार था ।

इन प्रान्तों में जंगलों में रहनेवाले भील लोगों का संगीत पृथक् ढंग का था ।

## महाराष्ट्र

इन दिनों महाराष्ट्र प्रान्त में रामदास, तुकाराम और सुखबाई ने धार्मिक उपदेशों को गायन के द्वारा सामान्य जनता में पहुँचाया और उनमें एक नवीन स्फूर्ति भरदी । इनके प्रवचनों का क्षेत्र केवल नगरों तक ही सीमित न रहा, बल्कि महाराष्ट्र प्रांत के ग्राम-ग्राम में पहुँचा । त्योहारों के अवसरों पर महिलाएँ सजधज कर गीत और नृत्य का आयोजन किया करती थीं । विवाह के समय भी संगीत का कार्यक्रम चला करता था ।

१. दी स्टडी आफ इण्डियन म्यूजिक —वेलिश पेबस (Wallish Pebas)

शिवाजी के राज्याभिषेक के अवसर पर एक सप्ताह तक गायन और नृत्य का कार्यक्रम चला था।

'पवाड़ा' लोकगीत का एक प्रकार अधिक प्रचलित था। इसमें कथानक प्रधान रहता था। इनके अतिरिक्त अन्य भाव-गीत, अभंग गीत, लावनी और बौरी नृत्य जनता में अधिक प्रचलित थे।

उस काल तक, इस प्रान्त के संगीत में खयाल, कव्वाली सितार और तबले का प्रचार कम था। परन्तु ध्रुवपद और भजन का गायन में; दुन्दुभी, मृदंग और वीणा का प्रयोग वादन में अधिक किया जाता था। महाराष्ट्रीय संगीत का नैतिक स्तर उत्तर-भारत के संगीत से उच्च था। संगीतज्ञों का समाज में उच्च स्थान था। महाराष्ट्र के संगीतज्ञों ने संगीत को व्यवसाय के रूप में न अपनाकर कला के रूप में अपनाया था। वे कभी यवनों के सामने नहीं झुके। उन्होंने सदैव उनके प्रलोभनों को ठुकराया और अपनी कला का उपयोग राष्ट्रोत्थान में किया। उनका विश्वास था कि संगीत-कला राष्ट्र के लिए तभी सार्थक बन सकती है, जब वह मानव-प्रेम का प्रकटीकरण करे। उनकी दृष्टि से जो संगीत मानव-हृदयों में उच्च भावों का आविर्भाव नहीं कर सकता, वह श्रेष्ठ संगीत कदापि नहीं हो सकता। यह पवित्र भावना महाराष्ट्रीय संगीत की पृष्ठभूमि थी। राग-रागिनियों के शुद्ध रूप ही साधारण जनता में प्रचलित थे।

इस युग के भक्त संगीतज्ञों में गणेशनाथ और नामदेव जी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। गणेशनाथ जी के पद महाराष्ट्र में बड़े लोकप्रिय हुए और नामदेवजी के गीतों को बालक, युवा और वृद्ध सभी गाने लगे। सच बात तो यह है कि



उत्तर-भारत पर और दक्षिण में भी मुसलमानों का [?]ौर-दौरा था, उस समय महाराष्ट्र ही एक ऐसा प्रान्त था, जिसका संगीत मानव को उसके यथार्थ रूप की ओर इंगित कर रहा था। वास्तव में महाराष्ट्रीय संगीत ने भारतीय संगीत-परम्परा के पवित्र गौरव को शानदार ढंग से सुरक्षित रखा। उन्होंने कला की शान को नहीं गिरने दिया। उन्होंने अंत समय तक कला की एकसूत्रता, एकरूपता और एकदीप्तता को अक्षुण्ण रखा।[1] इस प्रकार 'मराठा काल का संगीत ही भारतीय संगीत की शुद्धता, सुन्दरता एवं दिव्यता को स्थिर रख सका और उसके शिल्प की उच्चता की समानता उस काल का यूरोपीय संगीत भी नहीं कर सकता।'[2]

## बंगाल

उधर बंगाल में चैतन्य महाप्रभु के गीतों ने समस्त वातावरण को संगीतमय बना दिया था। साथ ही चंडीदास और जयदेव के गीत भी बड़े लोकप्रिय थे। गीतों में 'बाउल', 'भटियाली' और कीर्तन एवं नृत्यों में 'दुर्गा नृत्य', 'मयूर नृत्य', 'पनघट नृत्य', 'छाऊ नृत्य', 'सागर नृत्य', 'चन्द्रभागा नृत्य' और 'पुष्ट नृत्य' इत्यादि अनेक प्रचलित हो चले थे।

बर्दवान जिले में 'नरमुण्ड नृत्य' तथा 'भाडू', तुसू और 'बालान' गीत बड़े प्रसिद्ध हैं। जिला बीरभूम जो बंगाल का उत्तरी और पश्चिमी भाग है, वहाँ 'बाउल' और 'कविगान' गीत बड़े प्रसिद्ध लोकगीत हैं।

---

१. दी म्यूजिक आफ महाराष्ट्र पीरीयड—आम सजीवा, पृ० १०५
२. ईरानी विद्वान् 'अकिमर' के विचार

उड़ीसा

उड़ीसा प्रान्त में उदयगिरि में ४४ एवं खण्डगिरि में २१ ऐसी गुफाएं खोदकर निकाली गई हैं, जिनमें पत्थरों पर कलात्मक चित्र एवं मूर्तियाँ हैं। मौन संगीत की कलात्मक अभिव्यक्ति बड़ी चतुरता से की गई है।

पुरी के उत्तर-पूर्व के कोण पर समुद्र-तट पर प्रसिद्ध विशाल कोणार्क का सूर्य मन्दिर स्थित है। इसका निर्माण-काल १३वीं शताब्दी का मध्य-भाग है। मन्दिर के शिखर की चारों दिशाओं में ब्रह्मा की चार मूर्तियाँ हैं। इनके बीच-बीच में विशाल नर्तकियों की मूर्तियाँ हैं, जो वीणा-वादन करती हुई, उल्लास की मुद्रा में बनी हुई हैं। यहीं दो नृत्य करते हुये विशाल हाथियों की मूर्तियाँ अलग बनीं हैं। भुवनेश्वर के मन्दिर में भी, जो इसी काल में बना था, अनेक सांगीतिक मूर्तियाँ पाई जाती हैं। मन्दिरों में नर्तकियों के नाचने की प्रथा पायी जाती थी। अतः अनुमान है कि 'देवदासी' प्रथा की नीवँ इसी काल से पड़नी प्रारम्भ हो गयी थी। इस प्रान्त के प्रसिद्ध लोक-नृत्य 'उड़ीसी' और 'छाऊ' हैं।

बिहार

बिहार में पटना नगर संगीत का केन्द्र माना जाता था। प्रसिद्ध संगीतज्ञा चिन्तामणि वीणा-वादन तथा गायन में दक्ष थी। एक अन्य महान् संगीतज्ञ विल्वमंगल ने भी बिहार के संगीत में महान् योग दिया। 'प्रणय-नृत्य', 'भावना-नृत्य' और 'चन्द्र-नृत्य' इत्यादि इस काल में निर्मित हुए।



'मैथिल कोकिल' प्रसिद्ध कवि एवं संगीतज्ञ विद्यापति के गीत महलों से लेकर झौंपड़ी तक में गाये जाते थे। 'कजरी' गायन खूब प्रचलित था। 'होली नृत्य', 'भक्ति नृत्य' और 'सुषमा नृत्य' इत्यादि खूब प्रचलित थे।

आसाम

आसाम में देवी-देवताओं की आराधना के लिए अनेक गीत और नृत्य प्रचार में आ गये थे। वर्षा न होने पर इन्द्र की उपासना गीतों द्वारा होती थी। फसल काटने के समय स्त्री-पुरुष गायन और नृत्य का आयोजन करते थे। महाभारत और रामायण की कथाओं पर आधारित अनेक गीत व नृत्य निर्मित किए गए। तत्कालीन संगीतज्ञ शंकरदेवजी के 'बड़-गीत' आज भी आसाम के मन्दिरों में प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त 'जूनी' और 'बीहू' भी प्रसिद्ध लोक-गीत हैं। इम्फ़ाल की घाटियों का 'मणिपुरी नृत्य' आज भी अपनी कलात्मकता के कारण संगीत में अपना विशेष स्थान बनाये हुए है। 'चाली', 'भंगीपरेंग', 'करताल-मरोल' और 'पुंग-चलम्' मणिपुर नृत्यों के प्रकार हैं।

इस मध्यकालीन युग में अनेक ऐसे संत-संगीतज्ञ भी हुए हैं, जिन्होंने भारतीय संगीत के विकास में बहुत योगदान दिया। जैसे—रहीम, रसखान, दरिया साहब, निजामुद्दीन औलिया इत्यादि। इन संतों ने मानव-जीवन की कुरूपता को विनष्ट किया और अपने पवित्र संगीत द्वारा मानवता को उज्ज्वल रूप दिया।

परन्तु १९वीं शताब्दी के मध्य तक भारत में अँग्रेजों का राज्य पूर्ण रूप से स्थापित हो चुका था। १८५७ ई० के ग़दर के बाद उन्होंने अपने पैर और मजबूती से भारत में जमा दिए। किंतु परिस्थितियों ने ऐसा पलटा खाया कि सन् १९४७ ई० में उन्हें भारत छोड़ देना पड़ा। तो आइए, अब तनिक अँग्रेजी काल के संगीत पर भी एक दृष्टि डाल लें।

□ □ □